

Rohit Prakash - Philosophy - 240 - 350 (1) नवभारत - मुजफ्फर आहमद
 Geography - 365 - 300 (2) सोशलिस्ट - एच. ए. दांगे
 Essay - 140 - 120 (3) इनकलाब - गुलाम हुसैन
 G.S - 300 - 325 (4) एम. ए. इ. इ. - 1920 ताराकिंद नाजीर साम्मवादी

1045 1095
 नए भारत का उदय (1) विदेशी प्रभुत्व के परिणाम (2) एल्मनकत - 1924 भारतीय दल
 (3) पश्चिमी सिंघार और शिक्षा (4) फिलिप स्टेट - 1926
 (5) देश का प्रशासकीय और आर्थिक एकीकरण (6) अदिल भारतीय कामगार तथा कृषक दल - 1928
 (7) भारत के अतीत की सौज अध्याय : 9
 (8) शासकों का जातीय दंग (9) चार बूक दल - बंगाल, बम्बई, पंजाब

नए भारत का उदय 37

साम्मवादी दल के स्त्रीक प्रश्न राष्ट्रवादी आंदोलन, 1858-1905
 (1) पेशावर - 1922 (2) कानपुर - 1924 (3) मेरठ - 1929 - साम्मवादी शहीद
 (4) केंद्रीय पुष्पा लक्ष्मी - 15006, जवाहरलाल नेहरू, कैलाश नाथ काटजू, 570 शंभारी

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राष्ट्रीय राजनीतिक चेतना बहुत तेजी से विकसित हुई और भारत में एक संगठित राष्ट्रीय आंदोलन का आरंभ हुआ। दिसंबर 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नींव पड़ी। आगे चल कर इसी के नेतृत्व में विदेशी शासन से स्वतंत्रता के लिए भारतीयों ने एक लंबा और साहसपूर्ण संघर्ष चलाया, और अंत में 15 अगस्त, 1947 को भारत मुक्त हो गया।

विदेशी प्रभुत्व के परिणाम

आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद बनियादी तौर पर विदेशी आधिपत्य की चुनौती के जवाब रूप में उदित हुआ। स्वयं ब्रिटिश शासन की परिस्थितियों ने भारतीय जनता में राष्ट्रीय भावना विकसित करने में सहायता दी। ब्रिटिश शासन तथा उसके प्रत्यक्ष और परोक्ष परिणामों ने ही भारत में राष्ट्रीय आंदोलन के विकास के लिए भौतिक नैतिक और बौद्धिक परिस्थितियां तैयार कीं।

इस आंदोलन की जड़े भारतीय जनता के हितों तथा भारत में ब्रिटिश हितों के टकराव में थीं। अंग्रेजों ने अपने हितों को पूरा करने के लिए ही भारत को अधीन बनाया था इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर वे भारत का शासन चलाते थे। वे अक्सर ब्रिटेन के लाभ के लिए भारतीयों की भलाई को भी ध्यान में नहीं रखते थे। धीरे-धीरे भारतीयों ने अनुभव किया कि लंकाशायर के उद्योगपतियों तथा अंग्रेजों के दूसरे प्रमुख वर्गों के हितों के लिए उनके अपने हितों का बलिदान दिया जाता रहा है।

स्वयं ब्रिटिश शासन भारत के आर्थिक पिछड़ेपन

(1) भारत में साम्राज्यवाद विरोधी जनता का मोर्चा - आर्मी दल, वैन ब्रैडल
 (2) बिहार समाजवादी दल - 1931 - J.P. आटे फूलग प्रहाद वर्मा
 (3) पंजाब समाजवादी दल - 1933

का प्रमुख कारण बनता गया और भारत में राष्ट्रीय आंदोलन का आधार यही तथ्य था। यह भारत के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक तथा राजनीतिक विकास में प्रमुख बाधक तत्व बन चुका था। इससे भी बड़ी बात यह है कि अधिक संख्या में भारतीय इस तथ्य को स्वीकार करने लगे थे और उनकी यह संख्या बढ़ती जा रही थी।

भारतीय समाज के प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक समूह ने धीरे-धीरे यह देखा कि उसके हित अंग्रेज शासकों के हाथों में असुरक्षित हैं। किसान देख रहे थे कि सरकार जमीन की मालगुजारी के नाम पर उनकी उपज का एक बड़ा हिस्सा उनसे ले लेती थी। सरकार और उसकी पुलिस, उसकी अदालतें और उसके अधिकारी, सभी उन जमींदारों और भूस्वामियों के समर्थक और रक्षक जो किसान से कसकर लगान वसूलते थे, वे उन व्यापारियों तथा सूदखोरों के रक्षक थे जो तरह-तरह से किसान को धोखा देते, उसका शोषण करते तथा उसकी जमीन उससे छीन लेते थे। जब कभी किसान जमींदारों और सूदखोरों के दमन के खिलाफ उठ खड़े होते, पुलिस तथा सेना कानून और व्यवस्था के नाम पर उनको कुचल दिया करती थी।

दस्तकार और शिल्पी यह महसूस कर रहे थे कि सरकार विदेशी प्रतियोगिता को प्रोत्साहन देकर उनको तबाह कर रही थी और उनके पुर्नर्वास के लिए कुछ नहीं कर रही थी।

आगे चलकर बीसवीं शताब्दी में आधुनिक कारखानों, खदानों तथा बागानों के मजदूरों ने भी पाया कि सारी जबानी हमदर्दी के बावजूद सरकार पूंजीपतियों का, खासकर विदेशी पूंजीपतियों का ही

(1) All India Congress Socialist Party - 1934

(2) Indian Bolshevik Party - 1939 - एन. टॉल - मजदूर

(3) Revolutionary Communist Party - 1942 संयुक्त नारायण टॉल

(4) Bolshevik Leninist Party - 1941 - अजीत उपा-इ-टॉल

नए भारत का उदय

137

साथ देती थी। जब कभी मजदूर ट्रेड यूनियन बनाने तथा हड़तालों, प्रदर्शनों और दूसरे संघर्षों के द्वारा अपनी स्थिति को सुधारने के प्रयत्न करते, सरकार का पूरा तंत्र उनके खिलाफ उठ खड़ा होता। इसके अलावा उन्होंने यह भी महसूस किया कि बढ़ती बेरोजगारी का समाधान केवल तीव्र औद्योगीकरण से संभव है, और यह कार्य केवल एक स्वाधीन सरकार कर सकती है।

भारतीय समाज के दूसरे समूह भी कुछ कम असंतुष्ट नहीं थे। शिक्षित भारतीयों का उभरता हुआ वर्ग अपने देश की दयनीय आर्थिक व राजनीतिक स्थिति को समझने के लिए नए-नए प्राप्त आधुनिक ज्ञान का उपयोग कर रहा था। पहले जिन लोगों ने 1857 में ब्रिटिश शासन का इस आशा में समर्थन किया था कि विदेशी होने के बावजूद यह शासन देश को एक आधुनिक तथा औद्योगिक देश बनाएगा, वे अब धीरे-धीरे निराश होने लगे थे। आर्थिक दृष्टि से उन्हें आशा थी कि ब्रिटिश पूंजीवाद ने जैसे ब्रिटेन में उत्पादक शक्तियों को विकसित किया था, उसी प्रकार वह भारत की उत्पादक शक्तियों को भी विकसित करेगा। लेकिन उन्होंने यह पाया कि ब्रिटेन के पूंजीवाद के इशारों पर भारत में ब्रिटिश शासन ने जो नीतियां अपनाई थीं वे देश को आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा या अल्पविकसित बनाए हुए थीं और उसकी उत्पादक शक्तियों के विकास के बाधक हो रही थीं।

राजनीतिक स्तर पर शिक्षित भारतीय समुदाय को यह लगा कि अंग्रेजों ने पहले भारत को स्वशासन का मार्ग दिखाने के जो भी दावे किए थे, उन सबको वे भूल चुके थे। अधिकांश ब्रिटिश अधिकारियों तथा राजनीतिक नेताओं ने खुली घोषणा की थी कि अंग्रेज भारत में बने रहेंगे। इसके अलावा भाषण, प्रेस तथा व्यक्ति को और अधिक स्वतंत्रता देने की जगह अंग्रेज उन पर अधिकाधिक प्रतिबंध लगाते जा रहे थे। अंग्रेज अधिकारियों तथा लेखकों ने भारतीयों को जनतंत्र या स्वाशासन की दृष्टि से अयोग्य घोषित कर दिया था। संस्कृति के क्षेत्र में भी शासक उच्च शिक्षा और आधुनिक विचारों के प्रसार के बार में अधिकाधिक नकारात्मक, बल्कि शत्रुतापूर्ण रवैया अपना रहे थे।

उभरते हुए भारतीय पूंजीपति वर्ग में बहुत धीरे-धीरे राष्ट्रीय राजनीतिक चेतना विकसित हुई। लेकिन इस वर्ग ने भी धीरे-धीरे पाया कि वह साम्राज्यवाद के कारण नुकसान उठा रहा था।

(1) Radical Democracy Party - 1940 एन. टॉल

(2) AITUC के अलावा होकर Indian Federation of Labour - एन. टॉल

सरकार की व्यापार, चुंगी, कर तथा यातायात संबंधी नीतियों के कारण इसके विकास में भारी बाधाएं आ रही थीं। नया तथा कमजोर वर्ग होने के नाते इसे अपनी कमजोरियों की भरपाई के लिए सरकार की सक्रिय सहायता की जरूरत थी। इसके बजाए सरकार और उसकी नौकरशाही उन विदेशी पूंजीपतियों का साथ दे रही थीं जो अपने विशाल संसाधनों के साथ भारत आकर यहां के सीमित औद्योगिक क्षेत्र को हथिया रहे थे। भारतीय पूंजीपतियों का विशेष विरोध विदेशी पूंजीपतियों की सख्त प्रतियोगिता के प्रति था। इस तरह भारतीय पूंजीपतियों ने भी महसूस किया कि उनके अपने स्वतंत्र विकास तथा साम्राज्यवाद के बीच एक अंतर्विरोध था, और यह कि एक राष्ट्रीय सरकार ही भारतीय व्यापार और उद्योगों के तीव्र विकास की परिस्थितियां तैयार कर सकती थी।

जैसा कि हमने इसके पहले देखा है, भारतीय समाज में केवल जमींदार, भस्वागी तथा राजे-महाराजे ही ऐसे वर्ग थे जिनके हित विदेशी शासकों के हितों से मेल खाते थे और इसलिए वे अत तक विदेशी शासन का साथ देते रहे। लेकिन इन वर्गों से भी बहुत से लोग राष्ट्रीय आंदोलन में आए। उस समय के राष्ट्रवादी वातावरण में देशभक्ति की भावना ने बहती की प्रभावित किया। इसके अलावा प्रजातीय भेदभाव तथा श्रेष्ठता की नीतियों ने प्रत्येक विचारशील, स्वाभिमानी भारतीय में घृणा जगाकर उसे उठ खड़ा किया, चाहे वह किसी भी वर्ग का क्यों न रहा हो। सबसे बड़ी बात यह है कि स्वयं ब्रिटिश शासन के विदेशी चरित्र ने भी राष्ट्रवादी प्रतिक्रिया को जन्म दिया। कारण यह है कि विदेशी दासता गुलाम जनता के दिलों में हमेशा ही देशभक्ति की भावनाएं पैदा करती है।

संक्षेप में, विदेशी साम्राज्यवाद का अपना चरित्र तथा भारतीय जनता पर उसका हानिकारक प्रभाव, इन बातों के कारण ही भारत में एक शक्तिशाली साम्राज्यवाद-विरोधी आंदोलन का धीरे-धीरे जन्म और विकास हुआ। यह आंदोलन एक राष्ट्रीय आंदोलन था क्योंकि यह समाज के विभिन्न वर्गों और समुदायों के लोगों को प्रेरित कर रहा था कि वे अपने मतभेद भुलाकर अपने शत्रु के खिलाफ एकजुट हों।

देश का प्रशासकीय और आर्थिक एकीकरण

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में भारत का एकीकरण

(1) विदेशी दासता के अपमान की चुभन को सबसे पहले बन्दी शिक्षित भारतीयों ने महसूस किया।
 (2) हमें यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि राष्ट्रीय आंदोलन आधुनिक शिक्षा प्रणाली के उपज नहीं था, बल्कि वह ब्रिटेन तथा भारत के हितों के टकराव से उत्पन्न हुआ था।

हो चुका था और वह एक राष्ट्र के रूप में उभर चुका था। इसलिए भारतीय जनता में राष्ट्रीय भावनाओं का विकास आसानी से हुआ। अंग्रेजों ने धीरे-धीरे पूरे देश में सरकार की एकसमान, आधुनिक प्रणाली लागू कर दी थी और इस तरह इसका प्रशासकीय एकीकरण हो चुका था। ग्रामीण और स्थानीय आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था के विनाश तथा अखिल भारतीय पैमाने पर आधुनिक व्यापार तथा उद्योग की स्थापना के कारण भारत का आर्थिक जीवन निरंतर एक इकाई के रूप में उलटा चला गया तथा देश के विभिन्न भागों में रहने वाले लोगों के आर्थिक हित परस्पर संबद्ध हुए। उदाहरण के लिए, भारत के किसी एक भाग में अकाल फूटता या वस्तुओं की कमी होती तो दूसरे सभी भागों में भी खाद्य-सामग्री की कीमतों तथा उपलब्धता पर उसका प्रभाव पड़ता था। इसके अलावा, रेलवे, तार, तथा एकीकृत डाक व्यवस्था के समारंभ ने भी देश को एकजुट बना दिया था और जनता, खासकर नेताओं के पारस्परिक संपर्क को बढ़ावा दिया था।

इस सिलसिले में भी, विदेशी शासन का अस्तित्व ही एकता का कारण बन गया, हालांकि यह शासन सामाजिक वर्ग, जाति, धर्म या क्षेत्र का भेद किए बिना पूरी भारतीय जनता का दमन करता था। पूरे देश के लोगों ने देखा कि वे एक ही शत्रु अर्थात् ब्रिटिश शासन, के हाथों पीड़ित थे। एक तरफ तो एक भारतीय राष्ट्रवाद के उदय का एक प्रमुख कारण बन गया, और दूसरी तरफ साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष तथा उस संघर्ष के दौरान उपजी एकजुटता की भावना ने भारतीय राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

पश्चिमी विचार और शिक्षा

उन्नीसवीं सदी में आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा और विचारधारा के प्रसार के फलस्वरूप बहुत बड़ी संख्या में भारतीयों ने एक आधुनिक, बुद्धिसंगत, धर्मनिरपेक्ष, जनतांत्रिक तथा राष्ट्रवादी राजनीतिक दृष्टिकोण अपनाया। वे यूरोपीय राष्ट्रों के समसामयिक राष्ट्रवादी आंदोलनों का अध्ययन, उसकी प्रशंसा तथा उनका अनुकरण करने के प्रयत्न भी करने लगे। रूसी, पेन, जान स्टुअर्ट मिल तथा दूसरे पाश्चात्य विचारक उनके राजनीतिक मार्गदर्शक बन गए जबकि मैजिनी, गैरीबाल्डी तथा आयरलैंड के राष्ट्रवादी नेता उनके राजनीतिक आदर्श हो गए।

विदेशी दासता के अपमान की चुभन को सबसे पहले इन्हीं शिक्षित भारतीयों ने महसूस किया। विचारों से आधुनिक बनकर इन लोगों ने विदेशी शासन की बुराईयों के अध्ययन की योग्यता भी प्राप्त कर ली। उन्हें एक आधुनिक, मजबूत समृद्ध और एकताबद्ध भारत की कल्पना से प्रेरणा प्राप्त होती रही। कालांतर में, इन्हीं में से बेहतरीन तत्व राष्ट्रीय आंदोलन के नेता और संगठनकर्ता बने।

हमें यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि राष्ट्रीय आंदोलन आधुनिक शिक्षा प्रणाली की उपज नहीं था, बल्कि वह ब्रिटेन तथा भारत के हितों के टकराव से उत्पन्न हुआ था। इस प्रणाली ने किया यह कि शिक्षित भारतीयों को पाश्चात्य विचार अपनाकर राष्ट्रीय आंदोलन के नेतृत्व संभालने तथा उसे एक जनतंत्रिक और आधुनिक दिशा देने में समर्थ बनाया। वास्तविकता यह है कि स्कूलों तथा कालेजों में अधिकारीगण विदेशी शासन के प्रति विनम्रता और सेवा का भाव ही जगाने के प्रयत्न करते थे। राष्ट्रवादी विचार तो आधुनिक विचारों के सामान्य प्रसार के कारण आए। चीन तथा इंडोनेशिया जैसे दूसरे एशियाई देशों में तथा पूरे अफ्रीका में भी आधुनिक और राष्ट्रवादी विचार फैले हालांकि वहां आधुनिक स्कूलों और कालेजों की संख्या बहुत ही कम थी।

आधुनिक शिक्षा ने शिक्षित भारतीयों के दृष्टिकोणों तथा हितों में एक सीमा तक एकजुटता और समानता पैदा की। इस सिलसिले में अंग्रेजी भाषा की एक महत्वपूर्ण भूमिका रही। यह आधुनिक विचारों के प्रसार का साधन बन गई। यह देश के विभिन्न भाषाई क्षेत्रों के शिक्षित भारतीयों के बीच विचारों के आदान-प्रदान तथा संपर्क का भी माध्यम बन गई। लेकिन जल्दी ही अंग्रेजी साधारण जनता में आधुनिक ज्ञान के प्रसार में बाधक भी बन गई। यह शिक्षित नागरिक वर्गों को साधारण जनता, खासकर ग्रामीण जनता से अलग रखने का काम भी करने लगी। भारत के राजनीतिक नेताओं ने इस तथ्य को अच्छी तरह समझा दादाभाई नौरोजी, सैयद अहमद खान, और जस्टिस रानाडे से लेकर तिलक और गांधी जी तक सभी ने शिक्षा प्रणाली में भारतीय भाषाओं को एक बड़ी भूमिका दिए जाने की मांग पर आंदोलन किए। वास्तव में, जहां तक साधारण जनता का सवाल था, आधुनिक विचारों का प्रसार विकासमान भारतीय भाषाओं, उनमें विकसित हो रहे

साहित्य तथा सबसे अधिक भारतीय भाषाओं के लोकप्रिय प्रेस के कारण हुआ।

प्रेस तथा साहित्य की भूमिका

वह प्रमुख साधन प्रेस था जिसके द्वारा राष्ट्रवादी भारतीयों ने देशभक्ति की भावनाओं का, आधुनिक आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक विचारों का प्रचार किया तथा एक अखिल भारतीय चेतना जगाई। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बड़ी संख्या में राष्ट्रवादी समाचारपत्र निकले। उनके पन्नों पर सरकारी नीतियों की लगातार आलोचना होती थी, भारतीय दृष्टिकोण को सामने रखा जाता था, लोगों को एकजुट होकर राष्ट्रीय कल्याण के काम करने को कहा जाता था, तथा जनता के बीच स्वशासन, जनतंत्र, औद्योगीकरण, आदि के विचारों को लोकप्रिय बनाया जाता था। देश के विभिन्न भागों में रहने वाले राष्ट्रवादी कार्यकर्ताओं को भी परस्पर विचारों को आदान-प्रदान करने में प्रेस ने समर्थ बनाया।

उपन्यासों, निबंधों, देशभक्तिपूर्ण काव्य, आदि के रूप में राष्ट्रीय साहित्य ने भी राष्ट्रीय चेतना जगाने में प्रमुख भूमिका निभाई। बंगला में बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय तथा रवींद्रनाथ टैगोर, असमी में लक्ष्मीनाथ बेजबहूआ, मराठी में विष्णु शस्त्री चिपलुणकर तमिल में सुब्रामन्य भारती, हिंदी में भारतेन्दु हरिश्चंद्र और उर्दू में अल्लाफ हसन हाली इस काल के कुछ प्रमुख राष्ट्रवादी लेखक थे।

भारत के अतीत की खोज

अनेक भारतीय इस कदर पस्त हो चुके थे कि वे अपनी स्वशासन की क्षमता में एकदम भरोसा खो बैठे थे। इसके अलावा उस समय के अधिकांश ब्रिटिश अधिकारी और लेखक लगातार यह बात दोहराते रहते थे कि भारतीय लोग कभी भी अपना शासन चलाने के योग्य नहीं थे, कि हिंदू और मुसलमान हमेशा आपस में लड़ते रहे हैं, कि- भारतीयों के भाग्य में ही विदेशियों के अधीन रहना लिखा है, कि उनका धर्म और सामाजिक जीवन पतित और असभ्य हैं और इस कारण वे लोकतंत्र या स्वशासन तक के काबिल नहीं हैं। इस प्रचार का जवाब देकर अनेक राष्ट्रवादी नेताओं ने जनता में आत्मविश्वास और आत्मसम्मान जगाने के प्रयत्न किए।

वे गर्व से भारत की सांस्कृतिक धरोहर की ओर संकेत करते और आलोचकों का ध्यान अशोक चंद्रगुप्त विक्रमादित्य और अकबर जैसे शासकों ने विद्वानों कला, स्थापत्य, साहित्य, दर्शन, विज्ञान और राजनीति में भारत की राष्ट्रीय धरोहर की फिर से खोज करने में जो कुछ किया, उससे इन राष्ट्रवादी नेताओं को बल तथा प्रोत्साहन मिला। दुर्भाग्य से कुछ राष्ट्रवादी नेता दूसरे छोर तक चले गए तथा भारत के अतीत की कमजोरियों और पिछड़ेपन से आंखें चुराकर गैर-लोचनात्मक ढंग से उसे महिमामंडित करने लगे। खास तौर पर प्राचीन भारत की उपलब्धियों का प्रचार करने तथा मध्यकालीन भारत की उतनी ही महान उपलब्धियों को अनदेखा करने की प्रवृत्ति ने भी बहुत नुकसान पहुंचाया। इसके कारण हिंदुओं में सांप्रदायिक भावनाओं के विकास को प्रोत्साहन मिला। साथ ही इसकी जवाबी प्रवृत्ति के रूप में मुसलमान सांस्कृतिक और ऐतिहासिक प्रेरणा पाने के लिए अरबों तथा तुर्कों के इतिहास की ओर नजर करने लगे। इसके अलावा, पश्चिम के सांस्कृतिक साम्राज्यवाद की चुनौती का जवाब देते समय बहुत से भारतीय यह बात भी भूल जाते थे कि भारत की जनता कई क्षेत्रों में सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ी थी। इससे गर्व तथा आत्मसंतोष की एक झूठी भावना पनपी जो भारतीयों को अपने समाज के आलोचनात्मक अध्ययन से रोकती थी। इसके कारण सामाजिक-सांस्कृतिक पिछड़ेपन के खिलाफ संघर्ष कमजोर हुआ, तथा अनेक भारतीय दूसरी जातियों की स्वस्थ और नई प्रवृत्तियों और नए विचारों से विमुख रहे।

शासकों का जातीय दंभ

भारत में राष्ट्रीय भावनाओं के विकास का एक गौण परंतु महत्वपूर्ण कारण जातीय श्रेष्ठता का वह दंभ था जो भारतीयों के प्रति अनेक अंग्रेजों के व्यवहार में पाया जाता था। इस जातीय दंभ का एक कड़वा और प्रचलित रूप तब देखने को मिलता था, जब कोई अंग्रेज किसी भारतीय से किसी विवाद में उलझा होता था और न्याय व्यवस्था अंग्रेज का पक्ष लेती थी। जैसा कि जी. ओ. टूवेलियन ने 1864 में लिखा है: "हमारे अपने देश के एक व्यक्ति का बयान भी अदालतों में अनेकों हिंदुओं से अधिक

अल्लाफ हसन हाली - उर्दू, विष्णु शस्त्री चिपलुणकर - मराठी, सुब्रामन्य भारती - तमिल

(1) इस्ट इंडिया एसोसिएशन (1866) लंदन

(2) ग्रैंड ओल्ड मैन आफ इंडिया

(3) इंडियन एसोसिएशन (1876) बंगाल

(4) पन्ना सार्वजनिक सभा (1870)

(5) तीन बार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष

दादा भाई नौरोजी

सुरेंद्रनाथ, आनंदमोहन बोस

जस्टिस सन 1850

आधुनिक भारत

महत्व रखता है। यह एक ऐसी परिस्थिति है जिसमें शक्ति का एक भयानक साधन एक बेईमान और चालाक अंग्रेज के हाथों में पहुंच जाता है।

यह जातीय दंभ जाति, धर्म प्रांत या वर्ग का भेदभाव किए बिना तमाम भारतीयों को एक समान हीन करार देता था। वे यूरोपीय लोगों के कलकों में नहीं जा सकते थे और अक्सर उन्हें किसी गाड़ी के उम डिब्बे में यात्रा की अनुमति नहीं थी जिसमें यूरोपीय यात्री जा रहे हों। इससे उनमें राष्ट्रीय अपमान का बोध हुआ तथा अंग्रेजों के मुकाबले वे आने-आपको एक जनगण के रूप में देखने लगे।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पूर्ववर्ती संस्थाएं

1870 के दशक तक यह बात स्पष्ट हो चुकी थी कि भारतीय राष्ट्रवाद इतनी ताकत और गति अर्जित कर चुका है कि वह भारतीय राजनीति में एक प्रमुख शक्ति के रूप में उभर सके।

दिसंबर 1885 में स्थापित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में अखिल भारतीय पैमाने पर भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की पहली संगठित अभिव्यक्ति हुई। लेकिन इसके पहले भी अनेक संस्थाएं स्थापित हो चुकी थीं।

कैसिकि हमने इसके पहले पढ़ा है, राजा राममोहन राय पहले ऐसे भारतीय नेता थे जिन्होंने भारत में राजनीतिक सुधारों के लिए आंदोलन चलाया। 1836 के बाद देश विभिन्न भागों में अनेक सार्वजनिक समितियां स्थापित हुईं। इन सभी समितियों पर धनी तथा अभिजात लोगों का प्रभुत्व था जिनको तब "गणमान्य व्यक्ति" कहा जाता था, और इसका चरित्र प्रांतीय या स्थानीय था। इन्होंने प्रशासन में सुधार और प्रशासन में भारतीय लोगों की भागीदारी के लिए काम किया तथा ब्रिटिश संसद को लंबे-लंबे प्रार्थनापत्र भेजे जिनमें भारतीयों की गूँथि रखी जाती थीं।

1858 के बाद के काल में शिक्षित भारतीयों तथा अंग्रेजों के भारतीय प्रशासन के बीच की खाई धीरे-धीरे बढ़ती गई। ब्रिटिश शासन के चरित्र तथा भारतीयों के लिए उसके दुष्परिणामों का अध्ययन करने के बाद ये शिक्षित भारतीय भारत में ब्रिटिश नीतियों के अधिकाधिक मुखर आलोचक बन गए। उनका असंतोष धीरे-धीरे राजनीतिक कार्यकलाप में अभिव्यक्त हुआ। उस समय तक मौजूद समितियों

राजनीतिक चेतना-प्राप्त भारतीयों को संतुष्ट करने में असफल रही।

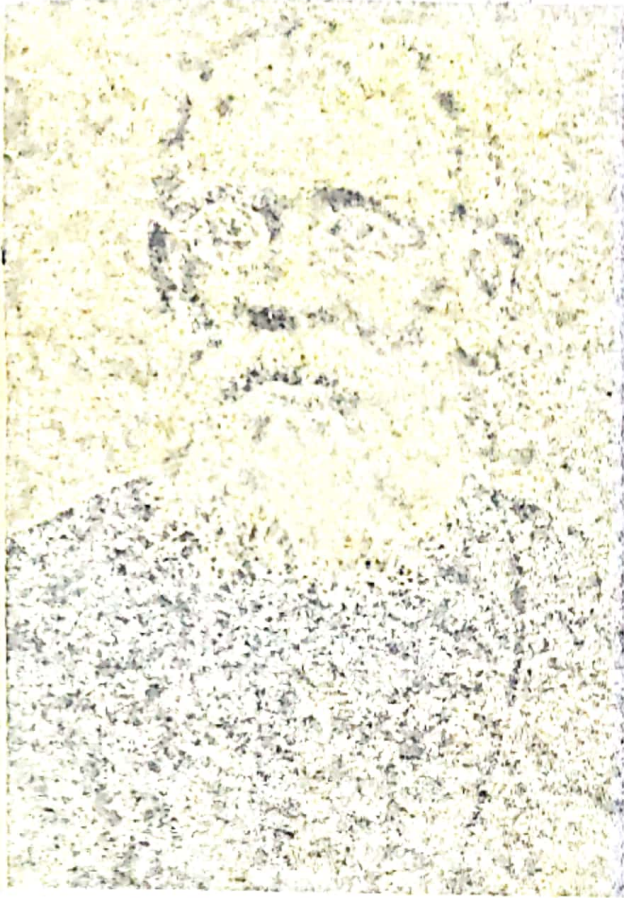
1866 में लंदन में दादाभाई नौरोजी ने इस्ट इंडिया एसोसिएशन की स्थापना की। इसका उद्देश्य भारतीय प्रश्नों पर विचार करना तथा भारत के कल्याण की दिशा में ब्रिटेन के नेताओं को प्रभावित करना था। बाद में उन्होंने प्रमुख भारतीय नगरों में भी इस एसोसिएशन की शाखाएं स्थापित कीं। 1825 में जन्में दादाभाई ने अपना पूरा जीवन राष्ट्रीय आंदोलन को समर्पित कर दिया। जल्द ही उन्हें भारत का पितामह (ग्रैंड ओल्ड मैन आफ इंडिया) कहा जाने लगा। वे भारत के पहले आर्थिक विचारक भी थे। अपने अर्थशास्त्रीय लेखन में उन्होंने सिद्ध किया कि भारत की गरीबी का कारण अंग्रेजों द्वारा उसका शोषण तथा यहां का धन ब्रिटेन भेजना था। तीन बार दादाभाई को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपना अध्यक्ष चुनकर उनका सम्मान किया। वास्तव में वे भारत के उन जनप्रिय राष्ट्रवादी नेताओं की लंबी कतार के अग्रणी नेता थे जिनका नाम भर जनता के हृदय में हलचल मचाने के लिए काफी था।

कांग्रेस-पूर्व राष्ट्रवादी संगठनों में सबसे महत्वपूर्ण कलकत्ता का इंडियन एसोसिएशन था। बंगाल के कम अवस्था के राष्ट्रवादी ब्रिटिश इंडिया एसोसिएशन की रुढ़िवादी और जमींदार-समर्थक नीतियों से धीरे-धीरे ऊब रहे थे। वे व्यापक सार्वजनिक महत्व के सवाल पर लंबा राजनीतिक आंदोलन छेड़ना चाहते थे। प्रतिभाशाली लेखक-वक्ता सुरेंद्रनाथ बनर्जी के रूप में उन्हें एक नेता भी मिल गया। बनर्जी अपने अधिकारियों द्वारा बहुत ही अन्यायपूर्ण ढंग से इंडियन सिविल सर्विस से बाहर कर दिए गए थे क्योंकि ये अधिकारी अपनी सविंस में किसी स्वतंत्र विचारों वाले भारतीय की उपस्थिति नहीं बर्दाश्त कर सके। बनर्जी ने 1875 में कलकत्ता के छात्रों के सामने राष्ट्रवादी विषयों पर प्रभावशाली भाषण देकर अपना राजनीतिक जीवन शुरू किया। सुरेंद्रनाथ तथा आनंदमोहन बोस के नेतृत्व में बंगाल के इन युवा राष्ट्रवादियों ने जुलाई 1876 में इंडियन एसोसिएशन की नींव रखी। इस एसोसिएशन ने अपने सामने राजनीतिक प्रश्नों पर भारतीय जनता को एकताबद्ध करने का लक्ष्य रखा। अपनी ओर बड़ी संख्या में जनता को खींचने के लिए इसने निर्धन वर्गों के लिए कम सदस्यता शुल्क निर्धारित किया। बंगाल के

(6) मद्रास महानन सभा — 1884

एम. वॉरे रघुनाचारी, जी० सुब्रह्मण्य अय्यर, आनंद यादव

- (1) जॉर्ज प्रेसीडेन्स सुरदनाथ बनजी फिराजशाह, वदरहीन, तेलग
 (2) सुरदनाथ बनजी इंडियन सिविल सर्विस सेवा कर गए
 1875 में राजनीतिक जीवन शुरू किया
 नए भारत का उदय
 (3) प्रथम भारतीय कांग्रेस का अध्यक्ष उल्लू सी० बनजी



सुरदनाथ बनजी

शहरों और गांवों तथा बंगाल से बाहर अनेक शहरों में भी इस एसोसिएशन की कई शाखाएं खोली गईं। भारत के दूसरे भागों में भी युवक लोग सक्रिय थे। जस्टिस रानाडे तथा उनके साथियों ने 1870 के दशक में पना सांख्यिक सभा की स्थापना की। प्रम. वीर राघवाचारी, जी. सुब्रामन्य अय्यर, आनंद चारुलु तथा दूसरों ने 1884 में मद्रास महाजन सभा की नींव डाली। फिराजशाह महता, क. टी. तेलग, वदरहीन तेषवजी तथा दूसरों ने 1885 में बांबे प्रेसिडेन्स एसोसिएशन बनाया।

इस तरह जो राष्ट्रवादी एक साझे शत्रु अर्थात् विदेशी शासन और शोषण के खिलाफ राजनीतिक एकता की आवश्यकता महसूस कर रहे थे, उनके लिए एक अखिल भारतीय राजनीतिक संगठन की स्थापना का समय आ चुका था। तब तक मौजूद संगठनों ने एक महत्वपूर्ण उद्देश्य पूरा किया था, परंतु उनका क्षेत्र और कार्यकलाप बहुत सीमित थे। वे अधिकतर स्थानीय प्रश्नों को उठाते थे तथा उनकी सदस्यता और नेतृत्व एक शहर या एक प्रांत के ही

थोड़े से लोगों तक सीमित थे। यहां तक कि इंडियन एसोसिएशन भी एक अखिल भारतीय संस्था नहीं बन सकी थी।



भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के पहले अधिवेशन के प्रतिनिधि, बंबई 1885

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

राष्ट्रवादी कार्यकर्ताओं की एक अखिल भारतीय संगठन बनाने की योजनाएं अनेक भारतीय जन तैयार करते आ रहे थे। लेकिन इस विचार को एक ठोस और अंतिम रूप देने का श्रेय एक सेवानिवृत्त अंग्रेज सिविल सर्वेंट ए. ओ. हयम को जाता है। उन्होंने प्रमुख भारतीय नेताओं से संपर्क किया और उनके सहयोग से बंबई में दिसंबर 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के पहले अधिवेशन का आयोजन किया। इसकी अध्यक्षता उल्लू सी. बनजी ने की तथा इसमें प्रतिनिधि शामिल थे। राष्ट्रीय कांग्रेस के उद्देश्य इस प्रकार घोषित किए गए— देश के विभिन्न भागों के राष्ट्रवादी राजनीतिक कार्यकर्ताओं के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध विकसित करना, जाति-धर्म-प्रांत का भेद किए बिना राष्ट्रीय एकता की भावना को विकसित तथा मजबूत करना, जनप्रिय मामलों को निरूपण तथा उन्हें सरकार के सामने रखना, और सबसे महत्वपूर्ण यह कि देश में जनमत को प्रशिक्षित और संगठित करना।

कहा जाता है कि कांग्रेस की स्थापना के पीछे हयम का प्रमुख उद्देश्य शिक्षित भारतीयों में बड़ रहे असंतोष की सुरक्षित निकासी के लिए एक सिफटी वाल्व बनाना था। वे असंतुष्ट राष्ट्रवादी शिक्षित वर्गों तथा असंतुष्ट किसान जनता के अपसी गेल को रोकना चाहते थे।

(4) 1886 — 436 प्रतिनिधि

(5) 1890 — मैं कांग्रेस को संबोधित किया — कादंबिनी गांगुली

मगर यह 'सेफ्टी वाल्व' का सिद्धांत सच्चाई का बहुत छोटा अंश है और यह पूरी अपर्याप्त तथा भ्रामक है। राष्ट्रीय कांग्रेस सबसे बढ़कर राजनीतिक चेतना-प्राप्त भारतीयों की इस आकांक्षा का प्रतिनिधित्व करती थी कि उनकी आर्थिक और राजनीतिक प्रगति के लिए कार्यरत एक राष्ट्रीय संगठन बनाया जाए। हम पहले ही देख चुके हैं कि कुछ जबर्दस्त शक्तियों के कार्यरत होने के परिणामस्वरूप देश में राष्ट्रीय आंदोलन पहले से ही फैल रहा था। इस आंदोलन के जन्म के लिए किसी एक व्यक्ति या कुछेक व्यक्तियों को श्रेय नहीं दिया जा सकता। ह्यूम के अपने उद्देश्य भी मिले-जुले थे। वे 'सेफ्टी वाल्व' बनाने के विचार से कहीं अधिक श्रेष्ठ विचारों से प्रेरित थे। वे भारत से तथा इसके गरीब किसानों से सचमुच प्यार करते थे। कुछ भी हो, राष्ट्रीय कांग्रेस को जन्म देने में जिन भारतीय नेताओं ने ह्यूम से सहयोग किया वे ऊंचे चरित्र वाले देशभक्त लोग थे। उन्होंने जान-बुझकर ह्यूम की सहायता इसलिए ली कि वे राजनीतिक कार्यकलाप के आरंभ में ही अपने प्रयासों के प्रति सरकार की शत्रुता मोल लेना नहीं चाहते थे। उन्हें आशा थी कि एक सेवानिवृत्त सिविल सर्वेंट की उपस्थिति अधिकारियों की आशंकाओं का समाधान करेगी। अगर ह्यूम कांग्रेस का उपयोग एक 'सेफ्टी वाल्व' के रूप में करना चाहते थे तो कांग्रेस के आरंभिक नेताओं को आशा थी कि वे ह्यूम का उपयोग एक 'तड़ित चालक' के रूप में कर सकेंगे।

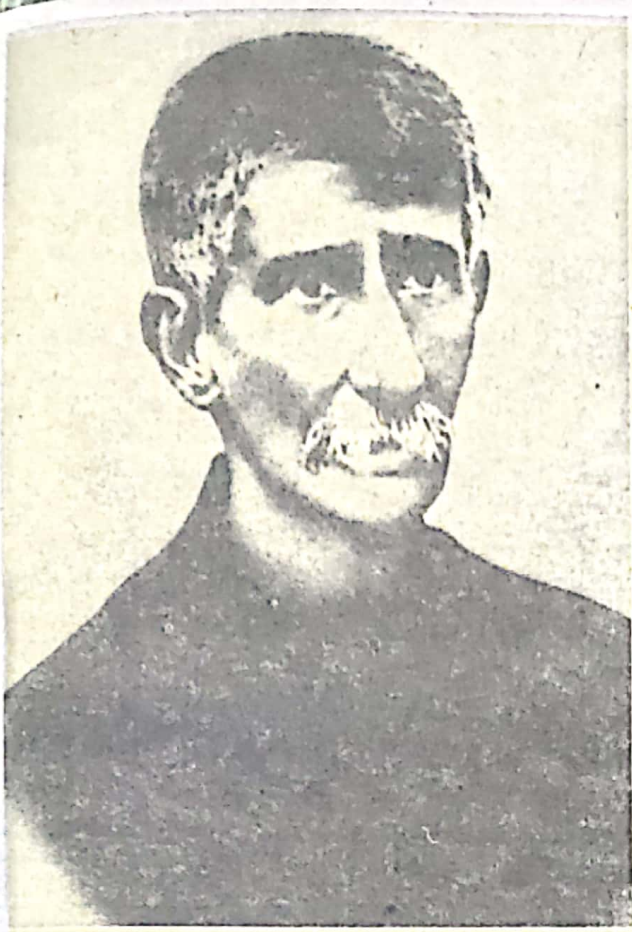


कादंबिनी गांगुली

कादंबिनी गांगुली ने कांग्रेस के अधिवेशन को संबोधित किया। यह इस बात का प्रतीक था कि भारत का स्वाधीनता संग्राम स्त्रियों को उस पतित अवस्था से उबारेगा जिसमें वे सदियों के कालक्रम में पहुंचा दी गई थीं।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कोई एक धारा नहीं थी जिसमें राष्ट्रवाद की नदी आगे बढ़ी। प्रांतीय सम्मेलन, और स्थानीय समितियों और राष्ट्रवादी समाचारपत्र भी बढ़ते हुए राष्ट्रवादी आंदोलन के प्रमुख उद्घोषक थे। खासकर प्रेस राष्ट्रवादी विचारों तथा राष्ट्रवादी आंदोलन को फैलाने का प्रमुख साधन बन गया था। इस काल के अधिकांश समाचारपत्र निश्चित ही व्यापार के रूप में नहीं चलाए जाते थे बल्कि राष्ट्रवादी गतिविधियों के मुखपत्र के रूप में आरंभ किए जाते थे। राष्ट्रीय कांग्रेस के आरंभिक वर्षों में इसके कुछ महान अध्यक्षों के नाम इस प्रकार थे: दादाभाई नौरोजी, बदरुद्दीन तैयबजी, फिरोजशाह मेहता, पी. आनंद चारुल, सरेंद्रनाथ बनर्जी, रमेशचंद्र दत्त, आनंदमोहन बोस और गोपाळ कृष्ण गोखले। इस काल में कांग्रेस तथा राष्ट्रीय आंदोलन के कुछ और प्रमुख नेता महादेव गोविंद रानाडे, बाल गंगाधर तिलक, शिशिरकुमार तथा मोतीलाल घोष नामक दो भाई, मदनमोहन मालवीय, जी. सुब्रामन्य अय्यर, सी. विजयराघवाचारी और दिनशा ई वाचा थे।

इस तरह 1885 में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के साथ छोटे पैमाने पर लेकिन संगठित रूप में, विदेशी शासन से भारत की मुक्ति का संघर्ष आरंभ हो गया। इसके बाद तो राष्ट्रीय आंदोलन बढ़ता ही गया तथा देश और देश की जनता ने स्वाधीन होने तक आराम को हराम जाना। आरंभ से ही कांग्रेस ने एक पार्टी नहीं, बल्कि एक आंदोलन का काम किया। 1886 में कांग्रेस के 436 प्रतिनिधि विभिन्न स्थानीय संगठनों तथा समूहों द्वारा चुने गए थे। इसके बाद कांग्रेस हर वर्ष दिसंबर में और हर बार देश के एक नए भाग में अपने अधिवेशन करती रही। जल्द ही इसके प्रतिनिधियों की संख्या बढ़कर हजारों में पहुंच गई। इसके प्रतिनिधियों में अधिकांश लोग वकील, पत्रकार, व्यापारी, उद्योगपति, अध्यापक और जमींदार होते थे। 1890 में कलकत्ता विश्वविद्यालय की पहली महिला स्नातक



.शिशिर कुमार घोष



बदरुद्दीन तैयब जी



जी. सुब्रमण्य अय्यर



दादा भाई नौरोजो और दिनशा ई. वाचा के साथ गोपाल कृष्ण गोखले (दाहिने खड़े)। यह चित्र लन्दन में 1897 में लिया गया था।

आरंभिक राष्ट्रवादियों के कार्यक्रम और कार्यकलाप

आरंभ के राष्ट्रवादी नेताओं का विश्वास था कि देश की राजनीतिक मुक्ति के लिए सीधी लड़ाई लड़ना अभी व्यावहारिक नहीं था। जो कुछ व्यावहारिक था, यह था कि राष्ट्रीय भावनाओं को जगाया तथा मजबूत किया जाए, बड़ी संख्या में भारतीय जनता को राष्ट्रवादी राजनीति की धारा में लाया जाए और राजनीति तथा राजनीतिक आंदोलन के लिए उन्हें शिक्षित किया जाए। इस बारे में पहला महत्वपूर्ण कार्य राजनीतिक प्रश्नों में जनता की रुचि विकसित करना तथा देश में जनमत का संगठन करना था। दूसरे, राष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रिय मांगों का निरूपण किया जाना था ताकि उभरते हुए जनमत को एक अखिल भारतीय स्वरूप मिल सके। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि पहले पहल राजनीतिक चेतना-प्राप्त भारतीयों तथा राजनीतिक कार्यकर्ताओं और नेताओं में राष्ट्रीय एकता पैदा की जाए।

आरंभिक राष्ट्रीय नेता इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि भारत अभी हाल ही में एक राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में पहुंचा है; दूसरे शब्दों में, भारत अभी एक नवोदित राष्ट्र था। भारत के राष्ट्रीय स्वरूप को बहुत सावधानी से निखारने की आवश्यकता थी। भारतीयों को बहुत होशियारी से एक राष्ट्र के रूप में संगठित किया जाना था। राजनीतिक चेतना-प्राप्त भारतीयों को क्षेत्र, जाति या धर्म के भेदों से ऊपर उठकर राष्ट्रीय एकता की भावना को विकसित और मजबूत करने के लिए लगातार डटकर काम करना पड़ रहा था। आरंभिक राष्ट्रवादियों ने अपनी राजनीतिक तथा आर्थिक मांगों का निर्धारण इस बात को दृष्टि में रखकर किया कि भारतीय जनता को एक साझे आर्थिक-राजनीतिक कार्यक्रम के आधार पर संगठित करना है।

साम्राज्यवाद की अर्थशास्त्रीय आलोचना

साम्राज्यवाद की अर्थशास्त्रीय आलोचना आरंभिक राष्ट्रवादियों का संभवतः सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक कार्य था। उन्होंने तत्कालीन औपनिवेशिक आर्थिक शोषण के सभी तीनों रूपों, अर्थात् व्यापार, उद्योग तथा वित्त के द्वारा शोषण पर ध्यान दिया। उन्होंने अच्छी तरह समझा कि ब्रिटेन के आर्थिक साम्राज्यवाद का मूल तत्व भारतीय अर्थव्यवस्था को

ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के अधीन बनाना था। भारत में एक औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के मूल तत्वों को विकसित करने के ब्रिटिश प्रयासों को उन्होंने तीखा विरोध किया। ये तत्व थे: कच्चा माल पैदा करने वाले देश, ब्रिटिश उद्योगों में पैदा माल के लिए मंडी, तथा विदेशी पूंजी के निवेश के क्षेत्र के रूप में भारत का रूपांतरण। उन्होंने इस औपनिवेशिक ढांचे पर आधारित सरकार की लगभग सभी महत्वपूर्ण आर्थिक नीतियों के खिलाफ एक शक्तिशाली आंदोलन खड़ा किया।

आरंभिक राष्ट्रवादी भारत की बढ़ती गरीबी तथा आर्थिक पिछड़ेपन और यहां आधुनिक उद्योग-धंधों तथा कृषि के विकास की असफलता को लेकर दुखी थे। उन्होंने अंग्रेजों द्वारा भारत के आर्थिक शोषण को इसके लिए जिम्मेदार ठहराया। दादाभाई नौरोजी ने 1881 में ही घोषित कर दिया था कि ब्रिटिश शासन "एक स्थायी, बढ़ता हुआ तथा लगातार बढ़ता हुआ विदेशी आक्रमण" है जो "धीरे-धीरे सही, मगर पूरी तरह देश को नष्ट कर रहा है।" भारत के परंपरागत हस्त उद्योगों को नष्ट करने तथा आधुनिक उद्योगों के विकास में बाधा डालने के लिए राष्ट्रवादियों ने सरकार की आर्थिक नीतियों की आलोचना की। उनमें अधिकांश ने भारतीय रेलवे, बागानों तथा उद्योगों में विदेशी पूंजी के भारी निवेश का विरोध किया। उनका तर्क यह था कि इससे भारतीय पूंजीपतियों का उत्पीड़न होगा और भारत की अर्थव्यवस्था तथा राजनीतिक प्रणाली पर ब्रिटेन का दबदबा और मजबूत होगा। उन्हें विश्वास था कि विदेशी पूंजी के निवेश से मौजूदा पीढ़ी ही नहीं बल्कि भावी पीढ़ियों के लिए भी गंभीर आर्थिक और राजनीतिक खतरे पैदा होंगे। उन्होंने बतलाया कि भारत की निर्धनता को दूर करने का प्रमुख उपाय आधुनिक उद्योगों का तीव्र विकास है। वे चाहते थे कि सरकार चुंगी द्वारा संरक्षण तथा प्रत्यक्ष आर्थिक सहायता देकर आधुनिक उद्योगों को प्रोत्साहन दे। भारतीय उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए उन्होंने स्वदेशी, अर्थात् भारतीय मालों के उपयोग तथा ब्रिटिश मालों के बहिष्कार के विचार को प्रोत्साहित किया। उदाहरण के लिए, 1896 में एक व्यापक स्वदेशी कार्यक्रम के अंग के रूप में पूना तथा महाराष्ट्र के दूसरे नगरों में विदेशी वस्त्रों की खुलेआम होली जलाई गई।

राष्ट्रवादियों को शिकायत थी कि भारत की दौलत 'इंग्लैंड ले जाई जा रही है, और उन्होंने मांग

की कि इस दोहन को रोका जाए। किसानों पर करों का बोझ कम करने के लिए उन्होंने जमीन की मालगुजारी घटाने के सवाल पर निरंतर आंदोलन चलाया। इनमें से कुछ ने उन अर्ध-सामंती कृषि स्वर्धों की भी आलोचना की जिनको अंग्रेज बनाए रखना चाहते थे। बागान-मजदूरों के काम की परिस्थितियों में सुधार के लिए भी राष्ट्रवादियों ने आंदोलन छेड़े। उन्होंने भारी करों को भारत की गरीबी का एक कारण बताया और नमक-कर खत्म करने तथा जमीन की मालगुजारी घटाने की मांग की। उन्होंने भारत सरकार के भारी फौजी खर्चों की निंदा की तथा इन्हे घटाने की मांग की। समय गुजरने के साथ-साथ अधिकाधिक राष्ट्रवादी इस निष्कर्ष पर पहुंचते गए कि विदेशी साम्राज्यवाद द्वारा देश का आर्थिक शोषण, उसे निर्धन बनाना तथा उसके आर्थिक पिछड़ेपन को बनाए रखना, वे ऐसी बातें थीं जो विदेशी शासन के कुछ लाभकारी पहलुओं पर पानी फेर देती थीं। उदाहरण के लिए, जीवन तथा संपत्ति की सुरक्षा के लाभों के प्रश्न पर **दादाभाई नौरोजी** ने इस प्रकार की टिप्पणी की :

मजि की बात यह है कि भारत में जीवन तथा संपत्ति की सुरक्षा प्राप्त है, मगर यद्यपि में ऐसी कोई बात नहीं है। केवल एक ही अर्थ या रूप में जीवन और संपत्ति की सुरक्षा प्राप्त है, अर्थात् लोग एक-दूसरे की या देशी तानाशाहों की हिंसा से सुरक्षित हैं परंतु इंग्लैंड की अपनी जकड़ से संपत्ति को और परिणामस्वरूप जीवन को विलकुल सुरक्षा प्राप्त नहीं है। भारत की संपत्ति सुरक्षित नहीं है। जो कुछ सुरक्षित और अच्छी तरह सुरक्षित है, वह यह है कि इंग्लैंड पूरी तरह सुरक्षित तथा निश्चित है और इस तरह पूरी सुरक्षा पाकर वह इस समय तीन या चार करोड़ पाँड प्रति वर्ष की दर से भारत की संपत्ति बाहर ले जा रहा है, या यहाँ उसका भक्षण कर रहा है . . . इसलिए मैं यह कहने की जुरत करूँगा कि भारत की संपत्ति या उसके जीवन को सुरक्षा प्राप्त नहीं है। **भारत के लाखों-लाख लोगों के लिए जीवन का अर्थ आधा-पेट भोजन या भयभीति या अकाल और महामारी है।**

कानून और व्यवस्था के बारे में **दादाभाई** ने लिखा :
 (1) 1885 ई 1892 तक के विधायी परिषदों के प्रस्ताव और सुधार की ही मांग उठाते रहे।
 (2) 1892 ई भारतीय परिषद कानून — के बाद नए विधान "प्रतिनिधित्व की मांग की नहीं।"

भारत में एक कहावत प्रचलित है : **"पीठ पर मार लो भेदा मगर पेट पर मत मारो।"** देशी तानाशाह के अधीन जनता जो कुछ पैदा करती है उसे अपने पास रखती और उपयोग करती है, हालांकि कभी-कभी उसे पीठ पर कुछ हिंसा झेलनी पड़ती है। ब्रिटिश भारत की तानाशाही में मनुष्य शांति के साथ रह रहा है और ऐसी कोई हिंसा यहाँ नहीं है। परंतु उसका सहारा उसे अनदेखे, शांतिपूर्ण तथों बहुत बारीक ढंग से उससे छिनता जा रहा है। वह शांति के साथ भूखा रहता है तथा शांति के साथ मर जाता है और यह सब पूरे कानून और व्यवस्था के साथ हो रहा है।

आर्थिक प्रश्नों पर राष्ट्रीयवादी आंदोलन के कारण अखिल भारतीय स्तर पर यह विचार फैला कि ब्रिटिश शासन भारत के शोषण पर आधारित है, भारत को गरीब बना रहा है तथा अर्थिक पिछड़ेपन और अल्पविकास पैदा कर रहा है। ब्रिटिश शासन से परोक्ष ढंग से जो भी लाभ हुए हों, उनके मुकाबले वे हानियाँ कहीं बहुत अधिक थीं।

सांविधानिक सुधार
 शुरु के राष्ट्रवादियों का आरंभ से ही यह विश्वास था कि भारत में अंततः लोकतांत्रिक स्वशासन लागू होना चाहिए। लेकिन उन्होंने इस लक्ष्य को फौरन प्राप्त किए जाने की मांग नहीं की। उनकी तात्कालिक मांगें अत्यधिक साधारण थीं। वे एक-एक कदम उठाकर स्वाधीनता की मंजिल तक पहुंचना चाहते थे। वे बहुत सावधान भी थे कि सरकार उनकी गतिविधियों को कचल न दे। **1885 से 1892 तक वे विधायी परिषदों के प्रसार और सुधार को ही मांग उठाते रहे।**

उनके आंदोलन के दबाव में ब्रिटिश सरकार को **1892 में भारतीय परिषद कानून** पास करना पड़ा। इस कानून द्वारा शाही विधायी परिषद तथा प्रांतीय परिषदों में सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई। इनमें से कुछ सदस्यों को भारतीय अप्रत्यक्ष चुनाव द्वारा चुन सकते थे, मगर बहुमत सरकारी सदस्यों का ही रहता। राष्ट्रवादी 1892 के कानून से पूरी तरह असंतुष्ट थे तथा उन्होंने इसे मजाक बतलाया। उन्होंने परिषदों में भारतीय सदस्यों की संख्या बढ़ाने तथा उन्हें अधिक अधिकार दिए जाने की मांग उठाई। खास तौर पर उन्होंने सार्वजनिक धन पर प्रस्ताव और सुधार की ही मांग उठाते रहे।

भारतीयों के नियंत्रण की मांग की तथा वह नारा दिया जो इससे पहले अमरीकी जनता ने अपने स्वाधीनता के युद्ध के दौरान लगाया था। यह नारा था : "प्रतिनिधित्व नहीं तो कर भी नहीं।" पर साथ ही साथ वे अपने लोकतांत्रिक भागों के आधार को व्यापक बनाने में असफल रहे; उन्होंने जनता के लिए या स्त्रियों के लिए मताधिकार की मांग नहीं की।

बीसवीं सदी के आरंभ तक राष्ट्रवादी नेता और आगे बढ़ चुके थे और उन्होंने आस्ट्रेलिया और कनाडा जैसे स्वशासित उपनिवेशों की तर्ज पर ब्रिटिश साम्राज्य के अंदर रहकर ही स्वशासन (स्वराज्य) का दावा पेश किया। कांग्रेस के मंच से इस मांग को 1905 में गोखले और 1906 में दादाभाई नौरोजी ने उठाया।

प्रशासकीय और अन्य सुधार

आरंभिक राष्ट्रवादी व्यक्तिवादी प्रशासकीय फैसलों के निर्भीक आलोचक थे तथा उन्होंने भ्रष्टाचार, निकम्मापन और दमन से ग्रस्त शासन प्रणाली के सुधार के लिए अथक प्रयास किए। जो सबसे महत्वपूर्ण प्रशासकीय सुधार वे चाहते थे, वह यह था कि प्रशासकीय सेवाओं के उच्चतर पदों का भारतीयकरण हो। उन्होंने आर्थिक, राजनीतिक और नैतिक आधारों पर यह मांग उठाई। आर्थिक, दृष्टि से उच्चतर पदों पर यूरोपीय एकाधिकार दो कारणों से हानिकारक था : (अ) यूरोपीय लोगों को बहुत ऊंचे वेतन दिए जाते थे और इसी भारत का प्रशासन बहुत खर्चीला हो जाता था, जबकि समान योग्यता वाले भारतीयों को कम वेतन पर रखा जा सकता था, और (ब) यूरोपीय लोग अपने वेतन का एक बड़ा भाग भारत से बाहर भेजे देते थे और उनको पेंशन भी इंग्लैंड में अदा किया जाता था। इससे भारत की संपत्ति का दोहन और बढ़ता था। राजनीतिक दृष्टि से राष्ट्रवादियों का मत था कि इन सेवाओं का भारतीयकरण करने पर प्रशासन भारत की आवश्यकताओं के प्रति और सजग होता। इस प्रश्न के नैतिक पक्ष को 1897 में गोपालकृष्ण गोखले ने इस प्रकार रखा :

विदेशी प्रशासन का अत्यधिक खर्चीलापन बहरहाल इसकी अकेली बुराई नहीं है। यह एक नैतिक बुराई भी है; और बल्कि यह बड़ी

बुराई है। वर्तमान व्यवस्था में भारतीय जाति का कद घटने या उसकी वृद्धि के रुकने की प्रक्रिया चल रही है। हमें अपना पूरा जीवन, उसका एक-एक दिन हीनता के वातावरण में जीना पड़ रहा है और हममें जो श्रेष्ठता है उसे भी झुकना पड़ रहा है... हमारी मनुष्यता जिन महानता ऊंचाइयों को छू सकती है, वहां तक वर्तमान व्यवस्था में हम कभी नहीं पहुंच सकेंगे। प्रत्येक स्वशासी जनगण को जिस नैतिक ऊंचाई का अनुभव होता है, उसे हम महसूस नहीं कर सकते। हमारी प्रशासकीय और सैनिक योग्यताएं उपयोग के बिना धीरे-धीरे नष्ट हो जाएंगी और हम अपने ही देश में लकड़ी काटने वालों या कुएं से पानी निकालने वालों के रूप में जड़ होकर रह जाएंगे।

राष्ट्रवादियों की मांग थी कि न्यायिक अधिकारों को कार्यकारी अधिकारों से अलग किया जाए ताकि पुलिस तथा नौकरशाही के मनमाने अत्याचारों से जनता को कुछ सुरक्षा मिले। उन्होंने जनता के साथ पुलिस या दूसरे सरकारी अमलों के दमनकारी और निरंकुश व्यवहार के खिलाफ आंदोलन छेड़े। उन्होंने कानूनी प्रक्रिया में लगने वाली देरी तथा न्याय-व्यवस्था के ऊंचे खर्च की आलोचना की। उन्होंने भारत के पड़ोसी देशों के प्रति आक्रामक विदेश नीति का विरोध किया। उन्होंने बर्मा के अपहरण, अफगानिस्तान पर हमले तथा पश्चिमोत्तर भारत की आदिवासी जनता के दमन का भी विरोध किया।

उन्होंने सरकार से अग्रह किया कि वह राज्य की ओर से कल्याणकारी गतिविधियां चलाए। उन्होंने जनता में प्राथमिक शिक्षा के प्रसार पर बहुत अधिक जोर दिया। उन्होंने तकनीकी और उच्च शिक्षा की सुविधाएं बढ़ाने की मांग भी उठाई।

सूदखोरों के चंगुल से किसानों को बचाने के लिए उन्होंने कृषि बैंकों की स्थापना की मांग की। वे चाहते थे कि सरकार खेती के विकास तथा देश को अकाल से बचाने के लिए बड़े पैमाने पर सिंचाई की योजनाएं लागू करे। उन्होंने चिकित्सा तथा स्वास्थ्य सुविधाओं को बढ़ाने तथा पुलिस को ईमानदार, कुशल तथा जनप्रिय बनाने के लिए पुलिस व्यवस्था में सुधार की मांगें भी उठाईं।

राष्ट्रवादी नेताओं ने उन भारतीय मजदूरों के

(1) 1897 — तिलक को गिरफ्तारी
(2) 1889 — भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ब्रिटिश समिति "इंडिया" 1890

नए भारत का उदय
(3) पूना के दो नाटु भाइयों को बिना किसी मुकदमे के — अडमान भेज दिया गया

पक्ष में भी आवाज उठाई जो गरीबी से मजबूर होकर, रोजगार की तलाश में दक्षिण अफ्रीका, मलाया, मारीशस, वेस्ट इंडीज या ब्रिटिश गुयाना चले जाते थे। इनमें से अधिकांश देशों में उन्हें निर्मम दमन तथा जातीय भेदभाव का सामना करना पड़ता था। यह बात दक्षिण अफ्रीका के बारे में खास तौर पर सच थी, जहां भारतीयों के मूलभूत मानव अधिकारों की रक्षा के लिए मोहनदास करमचंद गांधी एक जनसंघर्ष चला रहे थे।

नागरिक अधिकारों की रक्षा

आरंभ में ही राजनीतिक चेतना-प्राप्त भारतीय लोकतंत्र ही नहीं, बल्कि भाषण, प्रेस, विचार तथा संगठन की स्वतंत्रता जैसे आधुनिक नागरिक अधिकारों के प्रति भी आकर्षित थे। जब भी सरकार इन नागरिक अधिकारों को सीमित करने के प्रयास करती, वे जमकर उनका बचाव करते। यही वह काल था जिसमें राष्ट्रवादी राजनीतिक कार्य के फलस्वरूप आम तौर पर पूरी भारतीय जनता तथा खास तौर पर शिक्षित वर्गों में लोकतांत्रिक विचार अपनी जड़ें जमाने लगे + वास्तव में लोकतांत्रिक स्वतंत्रता का संघर्ष स्वाधीनता के लिए राष्ट्रीय संघर्ष का अभिन्न अंग बन गया। 1897 में बंबई की सरकार ने बाल गंगाधर तिलक, दूसरे कई नेताओं और समाचारपत्रों के संपादकों को सरकार के खिलाफ असंतोष भड़काने के लिए गिरफ्तार कर लिया और उन पर मुकदमा चलाया। उनको लंबी-लंबी कैद की सजाएं दी गईं। इसी के साथ पूना के दो नाटु भाइयों को बिना किसी मुकदमे के अडमान भेज दिया गया। जनता की स्वतंत्रता पर इस हमले का पूरे देश में विरोध हुआ। तिलक जिन्हें अभी तक मुख्यतः महाराष्ट्र में ही जाना जाता था, रातों-रात अखिल भारतीय नेता बन गए।

राजनीतिक कार्य की विधियां

1905 तक भारत के राष्ट्रीय आंदोलन पर उन लोगों का वचस्व था जिनको प्रायः नरमपंथी राष्ट्रवादी कहा जाता है। कानून की सीमा में रहकर सांविधानिक आंदोलन तथा धीरे-धीरे, व्यवस्थित ढंग से राजनीतिक प्रगति-इन शब्दों में नरमपंथियों की राजनीतिक कार्यपद्धति को संक्षेप में रखा जा सकता है। उनका विश्वास था कि अगर जनमत को उभारा और

संगठित किया जाए और प्रार्थनापत्रों, सभाओं, प्रस्तावों तथा भाषणों के द्वारा अधिकारियों तक जनता की मांगों को पहुंचाया जाए तो वे धीरे-धीरे एक-एक करके इन मांगों को पूरा करेंगे।

इसलिए उनके राजनीतिक कार्य की दो दिशाएं थीं। प्रथम भारत की जनता में राजनीतिक चेतना तथा राष्ट्रीय भावना जगाने के लिए एक शक्तिशाली जनमत तैयार करना तथा जनता को राजनीतिक प्रश्नों पर शिक्षित और एकताबद्ध करना। राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रस्ताव तथा प्रार्थनापत्र भी मूलतः इसी लक्ष्य द्वारा निर्देशित थे। हालांकि देखने में तो उनके स्मरणपत्र और प्रार्थनापत्र सरकार को संबोधित थे, मगर उनका वास्तविक उद्देश्य भारतीय जनता को शिक्षित करना था। उदाहरण के लिए जब 1891 में युवक गोखले ने पूना सार्वजनिक सभा द्वारा सावधानी के साथ तैयार करके भेजे गए एक स्मरणपत्र के बाद सरकार द्वारा दिए गए दो पंक्तियों के उत्तर पर अपनी निराशा व्यक्त की तो जस्टिस रानाडे ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की :

आप अपने देश के इतिहास में हमारे स्थान को नहीं समझते। ये स्मरणपत्र कहने को सरकार के नाम संबोधित हैं। वास्तव में ये जनता को संबोधित हैं ताकि वह जान सकें कि इन विषयों पर कैसे विचार करना चाहिए। यह काम किसी परिणाम की आशा किए बिना अभी उनके वर्षों तक चलाया जाना चाहिए, क्योंकि इस तरह की राजनीति इस देश के लिए एकदम नई वस्तु है।

दूसरे, आरंभिक राष्ट्रवादी ब्रिटिश सरकार तथा ब्रिटिश जनमत को प्रभावित करना चाहते थे ताकि जिस प्रकार के सुधार राष्ट्रवादी द्वारा सुझाए गए थे उनको लागू किया जाए। नरमपंथी राष्ट्रवादियों का विश्वास था कि ब्रिटिश जनता और संसद भारत के साथ न्याय तो करना चाहती थी, मगर उन्हें यहां की वास्तविक स्थिति की जानकारी नहीं थी। इसलिए भारतीय जनमत को शिक्षित करने के साथ-साथ नरमपंथी राष्ट्रवादी ब्रिटिश जनमत को शिक्षित करने के प्रयास भी कर रहे थे। इस उद्देश्य से उन्होंने ब्रिटेन में जमकर प्रचार-कार्य किया। भारतीय पक्ष को सामने रखने के लिए प्रमुख भारतीयों के दल ब्रिटेन भेजे गए। 1889 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की एक ब्रिटिश समिति बनाई गई। इस समिति ने

(1) पंचपा १४, राजदोही ब्राह्मण, हिंसक खलनायक — राजदोह का कारखाना
 (2) डफरिन — डफरिन
 (3) डफरिन — 1887 — "जनता है एक बहुत सूक्ष्म भाग का प्रतिनिधि कहा" — आधुनिक भारत

1890 में इंडिया नामक एक पत्रिका भी निकालनी आरंभ की। दादाभाई नोरोजी ने अपने जीवन तथा आय का एक बड़ा हिस्सा इंग्लैंड में रहकर वहाँ की जनता में भारत की मांगों का प्रचार करने में लगा दिया।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के अध्ययनकर्ता कभी-कभी भ्रम में पड़ जाते हैं, जब वे पाते हैं कि प्रमुख भारतीय नेता अंग्रेजों के प्रति वफादारी की बड़ी-बड़ी कसमें खाते थे। इन कसमों का अर्थ होगा यह नहीं है कि वे सच्चे देशभक्त नहीं थे या वे कायर लोग थे। उनका दिल से विश्वास था कि ब्रिटेन के साथ भारत का राजनीतिक संबंध बने रहना इतिहास के उस चरण में भारत के हित में था। इसलिए उनकी योजना अंग्रेजों की भगाने की नहीं बल्कि ब्रिटिश शासन का स्वतंत्रण करके उसे एक राष्ट्रीय शासन के समान बनाने की थी। बाद में जब उन्होंने ब्रिटिश शासन की बुराइयों को तथा सुधार की राष्ट्रवादी मांगों को स्वीकार करने में सरकार की असफलता को समझा तो उनमें से अनेक ने ब्रिटिश शासन के प्रति वफादारी की कसम खाना बंद करके भारत के लिए स्वशासन की मांग उठानी आरंभ कर दी। इसके अलावा उनमें से अनेक केवल इसलिए नरमपंथी थे क्योंकि वे समझते थे कि विदेशी शासकों को खुलकर चुनौती देने का समय अभी नहीं आया था।

जनता की भूमिका

संकुचित सामाजिक आधार आरंभिक राष्ट्रीय आंदोलन को बुनियादी कमजोरी थी। अभी जनता में इस आंदोलन की पैठ नहीं हुई थी। वास्तव में जनता में नेताओं की कोई राजनीतिक आस्था नहीं थी। सक्रिय राजनीतिक संघर्ष छेड़ने की समस्याओं का वर्णन करते हुए गोपालकृष्ण गोखले ने कहा कि देश में विभाजन तथा उपायविभाजन की एक घटती श्रृंखला है, जनता का अधिकांश भाग अज्ञान से भरा हुआ तथा विचार और भावना के पुराने तरीकों से कसकर चिपका हुआ है, और यह जनता हर प्रकार के परिवर्तन की विरोधी है और परिवर्तन को समझती नहीं है।" इस प्रकार नरमपंथी नेताओं का विश्वास था कि औपनिवेशिक शासन के खिलाफ जुझारू जन-संघर्ष तभी छेड़ा जा सकता है जबकि भारतीय समाज के बहुविध तत्वों को एक राष्ट्र के सूत्र में बांधा जा चुका हो। परंतु वास्तव में यही तो वह संघर्ष था जिसके दौरान भारतीय राष्ट्र का निर्माण हो

वर्जन — 1890 में शांति का महल महल भरा रहा और भारत में रहते हुए मेरी मुख्य महत्वकांक्षा यह है कि मैं शांति के साथ इसे मरने में सहयोग दे सकूँ। भारतीय जनता की बढ़ती एकता उनके शासन में शांति के साथ इसे मरने में सहयोग दे सकूँ।

सकता था। जनता के प्रति इस गलत दृष्टिकोण का नतीजा यह हुआ कि राष्ट्रीय आंदोलन के आरंभिक चरण में जनता की एक निष्क्रिय भूमिका ही रही। इससे राजनीतिक नरमी का जन्म हुआ। जनता के समर्थन के अभाव में वे जुझारू राजनीतिक उपाय नहीं अपना सकते थे। हम आगे देखेंगे कि बाद के राष्ट्रवादी लोग नरमपंथियों से ठीक इसी अर्थ में भिन्न थे।

फिर भी आरंभिक राष्ट्रीय आंदोलन के संकुचित सामाजिक आधार से हमें यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि यह उन्हीं सामाजिक वर्गों के संकुचित हितों तक सीमित था जो इसमें शामिल थे। इसके कार्यक्रम और इसकी नीतियों भारतीय जनता के सभी वर्गों के हितों से जुड़ी थीं और औपनिवेशिक वर्चस्व के विरुद्ध उदीयमान भारतीय राष्ट्रीय का प्रतिनिधित्व करती थीं।

सरकार कर रवैया

आरंभ से ही ब्रिटिश अधिकारी उभरते हुए राष्ट्रवादी आंदोलन के खिलाफ तथा राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रति शंकालु थे। वायसराय डफरिन ने हयम को यह सुझाव दिया कि कांग्रेस राजनीतिक नहीं बल्कि सामाजिक मामलों को देखे और यह इस तरह उसी राष्ट्रीय-आंदोलन को दिशाभ्रष्ट करना चाहा। लेकिन कांग्रेस के नेताओं ने ऐसा परिवर्तन करने से इनकार कर दिया। परंतु जल्दी ही यह स्पष्ट हो गया कि राष्ट्रीय कांग्रेस अधिकारियों के हाथों का खिलौना नहीं बन सकती और यह धीरे-धीरे भारतीय राष्ट्रवाद का केंद्रबिंदु बनती जा रही थी। अब ब्रिटिश अधिकारी खुलकर राष्ट्रीय कांग्रेस तथा दूसरे राष्ट्रवादी प्रवक्ताओं की आलोचना और निंदा करने लगे। डफरिन से लेकर नीचे तक के सभी ब्रिटिश अधिकारी राष्ट्रवादी नेताओं को "बेवफा बाब" "राजदोही ब्राह्मण" तथा "हिंसक खलनायक" कहने लगे। कांग्रेस को "राजदोह का कारखाना" कहा जाने लगा। डफरिन ने 1887 में एक सार्वजनिक भाषण में राष्ट्रीय कांग्रेस पर हमला किया तथा उसे "जनता के एक बहुत सूक्ष्म भाग" का प्रतिनिधि बताकर उसकी हसी उड़ाई।

लाई कर्जन ने 1890 में विदेश सचिव को बतलाया कि "कांग्रेस का महल भरभरा रहा है और भारत में रहते हुए मेरी मुख्य महत्वकांक्षा यह है कि मैं शांति के साथ इसे मरने में सहयोग दे सकूँ।" भारतीय जनता की बढ़ती एकता उनके शासन में शांति के साथ इसे मरने में सहयोग दे सकूँ।

लिए एक बड़ा खतरा है, यह महसूस करके अधिकारियों ने "बांटो और राज करो" की को और भी जमकर लागू किया। उन्होंने अहमद खान, बनारस के राजा शिवप्रसाद तथा ब्रिटिश-समर्थक व्यक्तियों को प्रोत्साहित किया कि वे कांग्रेस के खिलाफ आंदोलन चलाएं। उन्होंने हिंदुओं और मुसलमानों में भी फूट डालने की कोशिश की। राष्ट्रवाद का विकास रोकने के लिए उन्होंने एक तरफ छोटी-छोटी छूटें देने और दूसरी तरफ निर्भय दमन करने की नीति अपनाई। फिर भी, अधिकारियों का यह विरोध राष्ट्रीय आंदोलन का विकास रोकने में असफल रहा।

आरंभिक राष्ट्रीय आंदोलन का मूल्यांकन

कुछ आलोचकों का विचार है कि राष्ट्रीय आंदोलन और राष्ट्रीय कांग्रेस को आरंभिक चरण में अधिक सफलता नहीं मिली। जिन सुधारों के लिए राष्ट्रवादियों ने आंदोलन छेड़े उनमें से बहुत थोड़े सुधार ही सरकार ने लागू किए।

इस आलोचना में बहुत कुछ सच्चाई है। मगर आरंभिक राष्ट्रीय आंदोलन को असफल घोषित करना भी आलोचकों के लिए सही नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो जो काम उन्होंने हाथ में लिए थे, उसकी तात्कालिक कठिनाइयों को देखते हुए, इस आंदोलन का इतिहास बहुत उज्ज्वल है। यह अपने समय की सबसे प्रगतिशील शक्ति का सूचक था। यह एक व्यापक राष्ट्रीय जागृति लाने तथा जनता में एक ही भारतीय राष्ट्र के सदस्य होने की भावना जगाने में सफल रहा। इसने भारतीय जनता को उनके साझे राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक हितों से जुड़े होने तथा साम्राज्यवाद के रूप में एक साझे शत्रु के अस्तित्व के प्रति जागरूक किया और इस प्रकार उनको एक राष्ट्र में एकताबद्ध किया। इसने जनता को राजनीतिक कार्य में प्रशिक्षित किया, उनमें जनतंत्र, नागरिक स्वतंत्रताओं, धर्मनिरपेक्षता तथा राष्ट्रवाद के विचारों को लोकप्रिय बनाया, उन्हें आधुनिक दृष्टिकोण जगाया तथा ब्रिटिश शासन की बुराइयों को उनके सामने रखा।

सबसे बड़ी बात यह है कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सही चरित्र को निर्भयतापूर्वक उजागर करने में आरंभिक राष्ट्रवादियों ने अग्रगामी भूमिका निभाई। उन्होंने लगभग प्रत्येक महत्वपूर्ण आर्थिक

प्रश्न को देश की राजनीतिक रूप से पराधीन स्थिति से जोड़ा। साम्राज्यवाद की उनकी शक्तिशाली अर्थशास्त्रीय अलोचना ब्रिटिश शासन के खिलाफ बाद के सक्रिय जनसंघर्ष के दौरान राष्ट्रवादी आंदोलन का एक प्रमुख अस्त्र बन गई। अपने आर्थिक आंदोलनों के द्वारा ब्रिटिश शासन के निर्भय, शोषक चरित्र को बेनकाब करके उन्होंने उसके नैतिक आधारों को भी कमजोर किया। आरंभिक राष्ट्रीयवादी आंदोलन ने एक साझा राजनीतिक-आर्थिक कार्यक्रम भी पेश किया जिसके आधार पर भारतीय जनता एकजुट होकर बाद में राजनीतिक संघर्ष चला सकी। इसने यह राजनीतिक सत्य सामने रखा कि भारत का शासन भारतीयों के हित में चलना चाहिए। इसने राष्ट्रवाद के प्रश्न को भारतीय जीवन का एक एक प्रमुख प्रश्न बना दिया। इसके अलावा, नरमपंथियों का राजनीतिक कार्य धर्म, भावुकता या खोखली भावना की दुहाई न देकर जनता के जीवन की ठोस वास्तविकता के ठोस अध्ययन और विशेषण पर आधारित था। आरंभिक आंदोलन की कमजोरियों को तो बाद की पीढ़ियों ने दूर कर दिया और उसकी उपलब्धियां आगे के वर्षों में एक और जोरदार राष्ट्रीय आंदोलन का आधार बन गई। इसलिए हम कह सकते हैं कि अपनी तमाम कमियों के बावजूद आरंभिक राष्ट्रवादियों ने वह बुनियाद बनाई जिस पर राष्ट्रीय आंदोलन आगे और भी विकसित हुआ। इसलिए उन्हें आधुनिक भारत के निर्माताओं में ऊंचा स्थान मिलना चाहिए।



कांग्रेस के आरंभिक काल के कुछ नेता : बैठे हुए (बाएं से दाएं) बी. चक्रवर्ती, ए. चौधरी, कृष्णा स्वामी अय्यर, दरभंगा महाराज, दादा भाई नौराजी, रास बिहारी घोष सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, खड़े (बाएं से दाएं) रतन टाटा, गोपाल कृष्ण गोखले, दिनशा वाचा, रमेशचंद्र दत्त, भूपेंद्रनाथ बसु, एस.पी. सिन्हा।

अहमद खान, बनारस के राजा शिव प्रसाद

(1) राधाकृष्ण - राममोहन राम - डिम्ब

(2) Beethamite - राममोहन राम

(3) एम्बेडकर का 1823 में प्रस्ताव - RMR

(4) लक्ष्मण - दादा भाई नौरोजी - भारत की आशा

(5) 1892 में वह पहले भारतीय मंत्रों Liberal Party की थी - Finsbury है ब्रिटिश भारत

(6) 1886, 1893, 1906 में कांग्रेस अध्यास

1. किस रूप में आपुनिक भारतीय राष्ट्रवाद भारत में भारतीय जनता और ब्रिटिश लोगों के आपसी हितों के टकराव का नतीजा था ?
2. उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में भारतीय राष्ट्रवाद को जन्म देने वाले प्रमुख कारकों की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए । इस विषय में विदेशी प्रभुत्व, देश प्रशासनिक तथा आर्थिक एकीकरण, पश्चिमी शिक्षा और विचार, प्रेस सांस्कृतिक विरासत और नस्लीदंभ की भूमिका का विवेचन कीजिए ।
3. इस दृष्टिकोण की समीक्षा कीजिए कि भारत के अतीत की पुनः खोज राष्ट्रीय आंदोलन के लिए मिला-जुला वरदान था ।
4. राष्ट्रीय आंदोलन में जमींदारों, भूस्वामियों और राजाओं की भूमिका का विवेचन कीजिए ।
5. भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में निम्नांकित के योगदान का वर्णन कीजिए :

- क दादा भाई नौरोजी
- ख सुरेंद्रनाथ बनर्जी
- ग गोपाल कृष्ण गोखले
- घ बाल गंगाधर तिलक

6. 1885 से 1905 के दौरान भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रति ब्रिटिश सरकार के रवैये की विवेचना कीजिए ।
7. 1905 तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के उद्देश्यों का विवेचन कीजिए । इस चरण को नरम दलीय चरण क्यों कहा जाता है ? इस दौरान राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य कमजोरियां क्या थीं ?
8. भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में नरम दल के लोगों के योगदान की विवेचना कीजिए
9. आरंभिक राष्ट्रवादियों द्वारा की गई साम्राज्यवाद की आर्थिक आलोचना का विवेचन कीजिए । उन स्थितियों का वर्णन कीजिए जिनके चलते भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस बनी । 1885 के पहले देश के विभिन्न भागों में जो राजनीतिक संगठन बने उनकी चर्चा कीजिए ।
10. सामूहिक परियोजना के एक हिस्से के रूप में कांग्रेस के संकल्पों, भाषणों तथा राष्ट्रीय आंदोलन के आरंभिक नेताओं की रचनाओं के चुने हुए अंशों का एक संकलन तैयार कीजिए । इस परियोजना में एक मानचित्र को भी शामिल किया जा सकता है जिसमें उन-उन स्थानों तथा वर्षों को दर्शाया गया हो जहां-जहां और जब-जब कांग्रेस के अधिवेशन हुए थे । 1885-1905 के दौरान होने वाले कांग्रेस के अध्यक्षों के चित्र, अन्य नेताओं के चित्र और इस काल की अन्य स्त्रोत सामग्रियों का संकलन भी इस परियोजना के अंतर्गत किया जा सकता है ।

(1) जन प्रहासक मद्रली - बम्बई - दादाभाई - Bombay Association - 1852

(2) London Indian Ass. का East India Ass. बम्बई का पहली राजनीतिक संस्था

(3) स्वराज - तिलक - कांग्रेस के मंत्र है इसकी पहली बार मांग की संस्था - दादाभाई

(4) गांधीजी के युद्ध -> गोखले के युद्ध -> रानाडे - महाराष्ट्र के सुकरान

(5) कोल्हापुर - गोखले . दबकत शैला संगा - रानाडे, गोखले (कानून, 1905)

(6) वेल्की भाषायोग्य आलोच्य व्यस्य - गोखले - वाघा

(7) 1909 के मार्क - फ्रेंच लुचार्ड के कानून में विदेशी नृस्ये निषेध - गोखले

(8) गोखले - शाहक भाई राष्ट्रिय के बीच मध्यस्थ - श्रीमिका

(9) ताक देने वाला प्रिया - मार्क

(10) भारत का नेताज कादशाह - तिलक - रानाडे

(11) पूना New English School - तिलक